विजय कुमार सिंह एवं अन्य

बनाम

अमित कुमार चामारिया एवं अन्य

(सिविल अपील नम्बर 7849 ऑफ 2019)

22 अक्टूबर, 2019

{एल. नागेश्वर राव और हेमन्त गुप्ता}

पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदार अधिनियम, 1997

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील संख्या- 7849/2019

सी0ओ0 नम्बर 1942/2013 में पारित कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 13.05.2016

साथ

सिविल अपील संख्या 7850/2019

अनिप सचेत्य, वरिष्ठ अधिवक्ता, आनंदो मुखर्जी, सुश्री अंजली चौहान, सुश्री रिया सचथे, श्रीमति सरला चंद्रा, सलाहकार..... अपीलकर्तागण

बनाम

प्रणब कुमार मल्लिक, सुश्री सोमा मल्लिक, सेवा कुमार देउरिया सलाह.....विपक्षीगण

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

हेमन्त गुप्ता, जे0

1. वर्तमान अपील में प्रतिउत्तरदाता द्वारा दायर दो किरायेदारो के विरूद्ध दो अलग-अलग बेदखली याचिकाओं में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 15.05.2016 को पारित आदेश चुनौती दी गयी है।

2. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 10.08.2011 के आदेश को रद्द कर दिया है, जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदार अधिनियम, 1997 की धारा 7(2) के अंतर्गत दायर एक आवेदन की अनुमति दी गई थी।

3. वर्तमान अपीलो में संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है, प्रतिउत्तरदाता ने अपीलकर्ताओ के विरूद्ध दो दुकानों की बकाया किराया का भुगतान न करने के आधार पर बेदखली याचिका दायर की, प्रतिउत्तरदाता का कहना है कि प्रारंभ में सुदामा सिंह 45/- रूपये और 25/- रूपये प्रति माह के मासिक किराये पर किरायेदार थे, लेकिन अब देय किराया 306/- रूपये है और 174/- रूपया प्रति माह हो गया। प्रतिउत्तरदाता का मामला यह है कि धन निष्पादन वाद संख्या 23/1961 में एक रिसीवर नियुक्त किया गया था और उक्त रिसीवर को दिनांक 10.02.2009 के आदेश के अंतर्गत सेवामुक्त कर दिया गया था। प्रतिउत्तरदाता ने बकाए किराए की मांग की, चूंकि बकाया राशि 306/- रूपये की दर से प्रति माह भुगतान नहीं किया गया इसलिए बेदखली की याचिका दायर की गई। अपीलकर्ता ने कोई किराया जमा नही किया, लेकिन बकाया किराया निर्धारित करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसमे कहा गया कि उन्होंने रिसीवर को जून 1993 तक का मासिक किराया का भुगतान किया है। हालांकि, रिसीवर ने अपीलकर्ताओ को किराया वसूलने के लिए अधिकृत व्यक्ति के बारे में सूचित नहीं किया है, इसलिए वे इसका भुगतान नही कर सके।

4. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आवेदन स्वीकार कर लिया तथा किराए की बकाया राशि का निर्धारण किया और निर्धारित किराए की बकाया राशि का भुगतान करने के लिए समय दिया। विद्वान एकल पीठ ने ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया तथा उसने सीओ 1941/2013 मे पारित आदेश का पालन करना चुना, हालांकि एक अन्य समन्वय पीठ ने सीओ 55/2014 में एक विपरीत दृष्टिकोण अपनाया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि समन्वय पीठ द्वारा पारित सीओ 55/2014 के आदेश में केस का अंतिम रूप से निस्तारण नहीं किया गया था और कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया गया था जो लंबित मुकदमें का फैसला करने के लिए विद्वान ट्रायल कोर्ट को दिशा दे सके। इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले को निर्णय के लिए बड़ी पीठ के पास भेजने के बजाय गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया।

5. इस पृष्ठभूमि में, अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि उच्च न्यायालय ने न्यायिक मर्यादा का पालन नही किया और धारा-7(2) के क्षेत्राधिकार को तय करने के लिए मामले को बड़ी पीठ के पास भेजा जाना चाहिए था। हम पाते है कि चूंकि विधि का एक छोटा सा प्रश्न विचार के लिए उठता है, कि क्या विद्वान एकल न्यायाधीश को मामले को बड़ी पीठ के पास भेजना चाहिए था या नही, इसलिए इस सवाल पर जाए बिना इस न्यायालय द्वारा तय किया जाने वाला प्रश्न अधिनियम की धारा-7 के दायरे के संबंध में एक निश्चित्ता लाना है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अधिनियम की धारा-7(2) के प्रावधान पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी अधिनियम, 1956 की धारा-17(2) के बराबर है, जो कि इस न्यायालय द्वारा पहले **बी0पी0 खेमका प्रा0लि0 बनाम बीरेंद्र कुमार भौमिक** में पारित फैसले में विचार का विषय था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा-7(2) के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने में देरी की माफी मांगने के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 लागू होगा। विद्वान अधिवक्ता ने **शिबू चंद्र धर बनाम पशुपति नाथ औद्या और गया प्रसाद कर बनाम सुब्रत कुमार बनर्जी** में दिए फैसले पर भी भरोसा जताया।

7. दूसरी ओर, प्रतिउत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि **बी0पी0 खेमका, शिबु चंद्र धर और गया प्रसाद कर** के फैसले 1956 के अधिनियम की धारा-17 से संबंधित है, जिससे उपधारा (2ए) न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करती है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) में निर्धारित समय को बढ़ा सकती है। उपधारा (2ए) एक अधिभावी प्रावधान है जो एक गैर-विषयक खंड से शुरू होता है। इस अधिनियम में ऐसा कोई समकक्ष प्रावधान नहीं है जो 1956 के अधिनियम को निस्तारित करते समय बनाया गया था। यह तर्क दिया गया है कि तीन जजों की बेंच ने **अर्जुन शियामल मखीजानी इत्यादि बनाम जमनादास सी0 तुलियानी और अन्य** के रूप में रिपोर्ट किए गए फैसले में बी0पी0 खेमका पर विचार किया और 1956 अधिनियम की उपधारा (2ए) के मद्देनजर इसे अलग किया।

8. अन्य तीन जजों की बेंच के फैसले में **नसीरूद्दीनंद अन्य बनाम सीताराम अग्रवाल** में यह माना गया कि 1956 के अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (2A) के खंड (a) के संदर्भ में, किरायेदार द्वारा किए गए आवेदन पर किराया जमा करने के लिए समय बढ़ाने की आपेक्षित शक्ति है बिना किसी प्रतिबंध के हैं। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के आवेदन का प्रश्न उठेगा, यदि अपीलकर्ता या आवेदक अदालत को संतुष्ट कर देता है कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर अपील या आवेदन न करने के लिए पर्याप्त कारण था। राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13(4) में प्रावधान है कि किरायेदार को सुनवाई की पहली तारीख पर या ऐसी तारीख से पहले, अदालत में जमा या भुगतान करना होगा, जो निर्धारण की तारीख से इस प्रकार निर्धारित राशि या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जो न्यायालय द्वारा बढ़ाया जा सकता है, जो तीन महीने से अधिक न हो। इस प्रकार, उपधारा (4) स्वंय एक विशिष्ट अवधि की सीमा प्रदान करती है जिसके भीतर जमा करना होता है, जो इस न्यायालय द्वारा बढ़ाए गए तीन महीने से अधिक नहीं हो सकता। किरायेदार द्वारा 15 दिनों के भीतर जमा किया जाना सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थ के तहत एक आवेदन नही है। चूंकि जमा के लिए किसी भी आवेदन की आवश्यकता नहीं है, इसलिए अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) के तहत किसी आदेश के अनुपालन में चूक होने पर धारा 5 के प्रावधानों का विस्तार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता

है कि राजस्थान अधिनियम के प्रावधान अधिनियम के धारा 7 की भाषा के करीब है। इसलिए अधिनियम की धारा 7(2) के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने में देरी की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होगा। इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गयाः-

"15. बी0पी0 खेमका [(1987) 2 एससीसी 407: एआईआर 1987 एससी 1010] पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी अधिनियम, 1956 (संक्षेप में पश्चिम बंगाल अधिनियम) से उत्पन्न हुआ। उक्त ममाले मे किरायेदार ने बकाया किराए के भुगतान में चूक की और मकान मालिक ने चूक के आधार पर बेदखली का मुकदमा दायर किया। जब मुकदमा लंबित था, पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी (संशोधन) अध्यादेश 6 ऑफ 1967, जिसे पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी (संशोधन) अधिनियम 30 ऑफ 1969 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, 26.08.1967 से प्रभाव में आया। अधिनियम ने संशोधनो को भूतलक्षी प्रभाव देते हुए यह प्रावधान किया कि अध्यादेश की धारा 2 द्वारा किए गए संशोधन उन अपीलों सहित सभी मुकदमों के संबंध में प्रभावी होंगे जो अध्यादेश के प्रारंभ होने की तारीख पर लंबित थे। संशाधनों ने अन्य बातों के साथ-साथ उन किरायेदारों को सक्षम बनाया जो अदालत में आवेदन करने और किश्तों में बकाया किराए का भुगतान करने में सक्षम थे और इस तरह अपनी बेदखली को रोक सकते थे। इसके अनुपालन में किरायेदार ने किराया जमा कर दिया। हालांकि, बाद में उन्होंने मासिक किराया भुगतान करने में चूक कर दी। नतीजतन, बचाव पक्ष को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि सितम्बर 1968

और मार्च 1969 के महीनों के लिए किराए का भुगतान करने में क्रमश: 44 दिन और 6 दिन की देरी हुई थी, जो कि धारा 17(1) का पश्चिम बंगाल अधिनियम उल्लंघन था।

17. यह न्यायालय बी0पी0 खेमका [(1987) 2 एससीसी 407: एआईआर 1987 एससी 1010] ने उपधारा (4) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कहा कि प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि यदि बाद की चूक 12 महीनें की अवधि के भीतर 4 महीने की अवधि के लिए है तब किरायेदार एक बार फिर उपधारा के तहत राहत का दावा कर सकता है। चूंकि चूक 40 दिनों से कम था, इस न्यायालय ने माना कि उक्त प्रावधान के तहत देरी को माफ किया जा सकता है।"

9. वैधानिक प्रावधानों को कब निर्देशिका कहा जाएगा और कब अनिवार्य कहा जाएगा इस संबंध में **मनोज लाल सील बनाम ऑक्टेवियस टी इंडस्ट्रीज लिमिटेड, ई पलानीसामी बनाम पलानीसामी और बलबंत सिंह बनाम आनंद कुमार शर्मा** पारित निर्णयों पर निर्भरता रखी गई है। एक प्रतिउत्तरदाता ने कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेशो का हवाला दिया, जिसमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया था कि बकाया किराया जमा न करने पर अधिनियम की धारा 7 के तहत आवेदन खारिज कर दिया जाएगा।

10. हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं मिली। अधिनियम की धारा 6(1) (b) के अंतर्गत बेदखली का एक आधार 12 महीने की अवधि के भीतर 03 महीने के लिए किराए के भुगतान में चूक है, या तीन साल की अवधि के भीतर तीन

किराये की अवधि के लिए भुगतान में चूक है, जहां किराया मासिक देय नहीं है। अधिनियम की धारा 7 जो किरायेदार को बकाया किराए का भुगतान करने का अवसर प्रदान करती है, ताकि भुगतान न करने के कारण बेदखली के आदेश से बचा जा सके। अधिनियम की धारा 7 के प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार हैः-

"7. कब एक किरायेदार को बेदखली के खिलाफ सुरक्षा का लाभ मिल सकता हैः-

(1) (a) धारा 6 में निर्दिष्ट किसी भी आधार पर मकान मालिक द्वारा बेदखली के लिए मुकदमा दायर किए जाने पर, किरायेदार प्रावधानों के अधीन होगा इस धारा की उपधारा (2) के अंतर्गत, मकान मालिक को भुगतान करें या सिविल जज के पास किराया ब्याज के साथ प्रति वर्ष दस प्रतिशत की दर से सहित सभी बकाया जमा करें, जिसकी गणना उस दर पर की जाएगी जिस दर पर अंतिम बार भुगतान किया गया था, उस महीने के पिछले महीने का अंत से जिसमें भुगतान से किया जाता है।

(b) ऐसा भुगतान किरायेदार पर समन तामील होने के एक महीने के भीतर किया जाएगा, जहां वह समन तामील किए बिना मुकदमें में उपस्थित होता है, वहां उपस्थिति के तिथि से एक महीने के भीतर किया जाएगा ।

(c) इसके बाद किरायेदार मकान मालिक को भुगतान करना जारी रखेगा या सिविल जज के पास महीने दर महीने अगले महीने की 15 तारीख तक उस दर पर किराए के बकाया राशि जमा करेगा।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी मुकदमें में, किरायेदार द्वारा देय किराया की राशि के बारे में कोई विवाद है, तो किरायेदार, उस उपधारा में निर्दिष्ट समय के भीतर सिविल जज के पास देय किराए के निर्धारण के लिए एक आदेवन के साथ जमा करेगा। ऐसी कोई भी जमा राशि तक तब स्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि उसके साथ देय किराए के निर्धारण के लिए आवेदन न किया गया हो। आवेदन प्राप्त होने पर, सिविल न्यायाधीश, उस दर को ध्यान में रखते हुए जिस दर पर अंतिम बार किराया भुगतान किया गया था और जिस अवधि के लिए किरायेदार द्वारा चूक किया गया होगा, एक वर्ष से अधिक की अवधि के भीतर देय राशि, यदि कोई हो, निर्दिष्ट करने वाला एक आदेश करेगा । उसके बाद किरायेदार ऐसे आदेश की तारीख से एक महीने के भीतर, मकान मालिक को निर्दिष्ट राशि का भुगतान करेगा ।

परन्तु मामले की परिस्थितियों का ध्यान में रखते हुए सिविल न्यायाधीश द्वारा समय का विस्तार केवल एक बार दिया जा सकता है और ऐसे विस्तार की अवधि दो महीने से अधिक नहीं होगी ।

3. यदि किरायेदार उपधारा (1) या उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी भी राशि को उसमें निर्दिष्ट समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर जमा करने या भुगतान करने में विफल रहता है, तो सिविल न्यायाधीश कब्जे की डिलीवरी के खिलाफ बचाव को समाप्त करने का आदेश देगा और मुकदमें की सुनवाई के साथ आगे बढ़ेगा।

4. यदि किरायेदार उपधारा (1) या उपधारा (2) के अनुसार जमा या भुगतान करता है, तो किराए के भुगतान में चूक के आधार पर मकान मालिक को परिसर का कब्जा देने का सिविल जज द्वारा कोई आदेश नहीं दिया जाएगा, लेकिन वह मकान मालिक को ऐसी लागत की अनुमति दे सकता है जो वह उचित समझे।

परन्तु किरायेदार इसके तहत किसी भी राहत का हकदार नही होगा यदि इस उपधारा के संबंध में एक बार ऐसी राहत प्राप्त करने के बाद वह फिर से बारह महीनों की अवधि के भीतर चार महीने का किराया में या लगातार तीन किराये की अवधि जहॉ किराया मासिक देय नहीं है, के भुगतान चूक करता है। ”

11. इस अधिनियम के द्वारा 1956 के अधिनियम को निरस्त कर दिया गया, जिसमें अधिनियम की धारा 7(1) और 7 (2) में निहित लगभग समान प्रावधान थे, लेकिन वास्तविक अंतर पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी (संशोधन) अध्यादेश संख्या iv ऑफ 1967 द्वारा सम्मिलित किए गये उपधाराओ (2ए) और (2बी) में था। इसे 26.08.1967 से पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी (संशोधन) अधिनियम 30 ऑफ 1969 द्वारा प्रतिस्थापित

किया गया, जिससे संशोधनो को भूतलक्षी प्रभाव दिया गया, जो अपील सहित सभी मुकदमों जो अध्यादेश के प्रारंभ होने से पहले लंबित थे, पर लागू किए गए। उपधारा (2ए) और उपधारा (2बी) जो सम्मिलित किया गया इस प्रकार हैंः-

"(2ए) उपधारा (1) या (2) में किसी बात के होते हुए भी

(2) किरायेदार के आवेदन पर, न्यायालय के आदेश द्वारा

(a) उपधारा (1) या उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी भी राशि के जमा या भुगतान के लिए निर्दिष्ट समय बढ़ा सकता है।

(b) किरायेदार और मकान मालिक की परिस्थितियों के अनुसार किराए के भुगतान में चूक के कारण उपधारा (1) के तहत जमा या भुगतान की जाने वाली ब्याज सहित कुल राशि को ध्यान में रखते हुए, किरायेदार को अनुमति दे सकती है ऐसी राशि, ऐसी किश्तो में और ऐसी तारीखों तक जमा या भुगतान करें जो न्यायालय तय करें ।

परन्तु जहां किस्तों में भुगतान की अनुमति है, ऐसी राशि में उस अवधि या चूक के लिए किराए की दर पर गणना की गई सभी राशियां शामिल होगी, जिसमें उसके बाद की अवधि और उस महीने के अंत तक की अवधि शामिल होगी जिसमें इस उपधारा के तहत आदेश दिया गया है। ऐसी

किसी भी राशि पर ब्याज के साथ उपधारा (1) में निर्दिष्ट दर पर उस तारीख से गणना की जाएगी जब ऐसी राशि देय थी और ऐसे आदेश की तारीख तक ।

(2बी) उपधारा (2ए) के खंड (a) तहत किसी भी राशि के जमा या भुगतान के लिए समय बढ़ाने के लिए कोई भी आवेदन तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि यह उपधारा(1) या उपधारा (2) में निर्दिष्ट समय की समाप्ति से पहले नहीं किया जाता है और उपधारा (2ए) के खंड (b) के तहत किराए के भुगतान में चूक के कारण देय राशि के जमा या भुगतान के लिए किस्त में भुगतान करने की अनुमति के लिए कोई भी आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक यह जमा या भुगतान के लिए उपधारा (1) में निर्दिष्ट समय की समप्ति से पहले नहीं किया जाता है ।

12. इस न्यायालय, 1956 के अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों पर विचार करते हुए बी0पी0 खेमका ने यह अभिनिर्धारित कियाः-

“11 चूंकि अध्यादेश को अधिनियम द्वारा लंबे समय के बाद प्रतिस्थापित किया गया था, अघ्यादेश की धारा 5 को अधिनियम में पुनः प्रस्तुत नहीं किया गया था क्योकि इसने अपना उद्देश्य पूरा कर लिया था। हालांकि महत्वपूर्ण बात यह है कि अघ्यादेश की धारा 5 अपीलकर्ता को हकदार बनाती है कि पहले प्रतिउत्तरदाता द्वारा दायर मुकदमें में धारा 17(2-ए) (b) के अंतर्गत आवेदन दाखिल करे। यह दूर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने

अध्यादेश के धारा 5 पर ध्यान नही दिया और वह छूट गया। जब धारा 17(2-ए) (b) तथा अध्यादेश की धारा-5 को एक साथ पढ़ा जाता है तो यह देखा जा सकता है कि विधायिका पर आशय उपधारा (2-ए) का लाभ सभी लंबित मुकदमें और अपीलों में इस तथ्य की परवाह किए बिना धारा 17(1) के तहत निर्धारित एक महीने की समय सीमा समाप्त हो गई है या नहीं । इसका कोई अन्य विवेचना संभव नहीं है क्योंकि किसी भी अन्य विवेचना से अध्यादेश की धारा 5 को समाप्त करने का प्रभाव पड़ेगा...

12. यदि विधायिका का आशय धारा 17(2-ए) के तहत दिए जाने वाले लाभों को केवल उन किरायेदार तक सीमित करना होता, जिसके खिलाफ अध्यादेश की घोषणा से एक महीने के भीतर मुकदमा दायर किया गया था, तो अध्यादेश की धारा 5 के तहत उपधारा (2-ए) को भूतलक्षी प्रभाव देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि सभी किरायेदार जिनके खिलाफ मुकदमें या अपील अध्यादेश की घोषणा की तारीख पर लंबित थे, अध्यादेश की घोषणा की तारीख से एक महीने के भीतर आवेदन दायर करके धारा 17(2-ए) का लाभ लेने के हकदार थे। इसलिए उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि धारा 17(2-ए) (ए) के तहत दाखिल आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है। यदि उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को स्वीकर किया जाता है तो यह अपीलकर्ता को असंभव कार्य करने के लिए कहने के समान होगा अर्थात अपीलकर्ता को धारा 17(2-ए) (बी) के तहत एक आवेदन दायर करने के लिए कहना जो 26 अगस्त 1967 को लागू हुआ था, 6 अप्रैल

1967 से एक महीना के अन्दर जब मुकदमें का समन तामील किया गया था। इस प्रकार पहले प्रश्न का उत्तर अपीलकर्ता के पक्ष में दिया जाता है। परिणामतः जहां तक 29 फरवरी 1968 को समाप्त अवधि के लिए बकाया भुगतान का संबंध है, अपीलकर्ता ने धारा 17(2-ए) (बी) के तहत अदालत के आदेशो का अनुपालन किया था और इसलिए वह धारा 17(4) के लाभ के दावा का हकदार था।"

13. उक्त निर्णय का पालन शिचंद्र धर के मामले में 1956 के अधिनियम को ध्यान में रखते हुए किया गया। गया प्रसाद कर का फैसला भी 1956 के अधिनियम के प्रावधानो की व्याख्या करती है।

14. हालांकि, अन्य तीन जजों की बेंच ने अर्जुन खिआमल के केस में बॉम्बे रेंट, होटल और लॉजिग हाउस रेंट कंट्रोल एक्ट 1947 के प्रावधानों की जांच करते हुए अर्जुन खिआमल में "वतन मल बनाम कैलाश" के फैसले पर विचार किया, जो राजस्थान अधिनियम से संबंधित था, में अभिनिर्धारित किया था कि राजस्थान अधिनियम की धारा 13(क) उन सभी किरयेदारों को लाभ प्रदान करने के लिए था जिनके खिलाफ किराए के भुगतान में चूक के आधार पर बेदखली के मुकदमें लंबित थे। इस प्रकार का निर्णय बॉम्बे एक्ट की धारा 12(3) (ए) में निहित अनिवार्य प्रावधानों के मद्देनजर प्रभावी नहीं था। बी0पी0 खेमका में अभिनिर्धारित फैसला इन्हीं कारणों से कोई सहायता नहीं प्रदान की।

15. इस न्यायालय ने नसीरूद्दीन के मामलें में इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या किसी कानून के प्रावधान निर्देशित है या अनिवार्य है, उसमें निहित भाषा पर निर्भर होंगे, और **"भारत संघ बनाम फिलिप टियागो डी गामा "** में दिए गये निर्णय का संदर्भ दिया। इस न्यायालय ने **श्यामाचरण शर्मा बनाम धरमदास** के फैसले की भी जांच की, जिसमें पाया कि म0प्र0 आवास नियंत्रण अधिनियम, 1961 में बकाया किराए को जमा करने में देरी को माफ करने के लिए कोई प्रतिबंध नहीं है। जबकि, राजस्थान अधिनियम के तहत अदालत के पास उपलब्ध विवेकाधिकार सीमित है। इसी कारण से यह पाया गया कि दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 के संदर्भ में अदालत के पास बकाया किराया जमा करने के लिए समय बढ़ाने की शक्ति है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया जो इस प्रकार हैः-

"31. हम आगे देख सकते है कि शिबू चंद्र धर बनाम पशुपति नाथ औध्या [(2002) 3 एससीसी 617] में, जो पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी अनधिनियम से उत्पन्न हुआ था, उसमें अभिनिर्धारित किया गया कि उपधारा 13 (2-ए) के तहत अधिनियम की धारा 17 के अनुसार, किरायेदार द्वारा निर्धारित समय के भीतर किराया जमा करने में चूक की स्थिति में अदालत को किराया जमा करने की अवधि बढ़ाने की शक्ति है। इस अदालत ने आगे यह भी कहा कि यदि किसी अदालत के पास किराया जमा करने की अवधि बढ़ाने की कोई शक्ति नहीं हो तो फिर किरायेदार के द्वारा छोटे चूक के मामलों में

जो कि ऐसे कारणों से है जो कि किरायेदार के नियंत्रण में नही है, में भी समय नही बढ़ाया जा सकता है।

32. यहॉ ध्यान देने वाली दिलचस्प बात यह है कि गणपत लाढ़ा बनाम शशिकांत विष्णु शिंदे [(1978) 2 एससीसी 573:(1978) 3 एससीसी 198] में इस न्यायालय में बॉम्बे होटल, आवास, गृह दरें नियंत्रण अधिनियम, 1947 (इसके बाद " बॉम्बे किराया अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 12(3) (ए) में होने वाले समान प्रावधानों की व्याख्या करते हुए किराया, अभिनिर्धारित किया कि (एससीसी पी. 580, पारा 11)

"धारा 12(3) (बी) न्यायालय में कोई विवेकाधीन क्षेत्राधिकार नहीं बनाती है। यह धारा किरायेदारों को कुछ शर्तों के साथ सुरक्षा प्रदान करती है और धारा का लाभ चाहने वाले किरायेदार को इन शर्तो का सख्ती से पालन करना होगा। यदि वैद्यानिक प्रावधान किरायेदार की कठिनाई को दूर करने के लिए पर्याप्त नहीं है तो उपाय विधायिका के पास है, यह अदालतों के हाथ में नहीं है।

इस प्रकार बॉम्बे रेंट एक्ट के तहत केवल कुछ आधारों पर ही अदालत अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग कर सकती है, अन्य आधारों पर नही।"

16. इस बात की जांच करते हुए इस न्यायालय ने **नसीरूद्दीन** मामले में कहा कि किसी कानून के प्रावधान को निर्देशित या अनिवार्य के रूप में कब माना जाना चाहिए, यदि किसी कार्य को किसी निजी व्यक्ति द्वारा निर्दिष्ट समय के भीतर निष्पादित करने की

आवश्यकता होती है, तो उस कानून के प्रावधान को अनिवार्य माना जाएगा लेकिन जब किसी सार्वजनिक पदाधिकारी को एक समय-सीमा के भीतर सार्वजनकि कार्य करने की आवश्यकता होती है तो उस कानून के प्रावधान को निर्देशित माना जाएगा जब तक कि उसके परिणाम निर्दिष्ट न हो। इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गयाः-

"37. किसी कानून का निर्वचन करने का अधिकार तब होता है जब वह अस्पष्ट हो । यह सर्वविदित है कि किसी दिए गए मामले में अदालत कपड़ें को इस्त्री कर सकती है लेकिन वह कपड़े की बनावट को नहीं बदल सकती है। ये विधान के क्षेत्राधिकार और आशय का विस्तार नहीं दे सकती है जबकि उसकी भाषा और प्रावधान सुस्पष्ट हो। यह किसी कानून में शब्दों को जोड़ या घटा नहीं सकता है या इसमें कुछ ऐसा नहीं पढ़ सकता है जो वहां नहीं है। यह कानून को फिर से लिखा या पुनर्गठित नहीं कर सकता है । यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह एक धारणा है कि विधायिका ने किसी भी अनावश्यक शब्दों का उपयोग नहीं किया है। यह सुस्थापित है कि कानून का वास्तविक आशय इस्तेमाल की गई भाषा से पता लगाया जाना चाहिए। यह सही हो सकता है कि अभिव्यक्ति " करेगा या कर सकता है " का उपयोग इस निष्कर्ष तक पहूॅचने के लिए निर्णायक नहीं हो सकता है कि क्या कानून निर्देशित है या अनिवार्य है। लेकिन विधायिका का आशय अधिनियम की उद्देश्य से पता लगाया जाना चाहिए। यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि जब

नकारात्मक शब्दो का उपयोग किया जाता है तो अदालतें यह मान लेती है कि विधायिका का आशय प्रावधान को अनिवार्य स्वरूप प्रदान करने की है।

38. फिर भी इस मामले का एक और पहलू है जिसे अनदेखी नहीं की जा सकती है। यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई कार्य किसी निजी व्यक्ति द्वारा एक निर्दिष्ट समय के भीतर किया जाना आवश्यक है, तो वह आमतौर पर अनिवार्य होगा, लेकिन जब कोई सार्वजनिक पदाधिकारी को एक समय-सीमा के भीतर सार्वजनिक कार्य करने की आवश्यकता होती है, उसे तब निर्देशित माना जाएगा जब तक उसके परिणाम निर्दिष्ट न हों। सदरलैंड्स इस्च्यूटरी कंस्ट्रक्शन थर्ड एडिशन वॉल्यूम, 3 एट पी0 107 में उल्लेखित है कि निजी व्यक्तियों के लिए एक वैधानिक निर्देश को आम तौर पर अनिवार्य माना जाना चाहिए और यह नियम सार्वजनिक अधिकारियों के संबंध में बिल्कुल विपरीत है। पुनः एट पी0 109, में उल्लेखित है कि अक्सर यह प्रश्न कि क्या किसी वैधानिक प्रावधान को अनिवार्य या निर्देशित व्याख्या दिया जाना चाहिए, वह इस बात से निर्धारित किया जा सकता है कि उस कानून में जो प्रावधान मौजूद है यदि वे गैर-अनुपालन के परिणामी प्रभाव देते है।

40. इस प्रकार, उपरोक्त दोनो निर्णयो के विश्लेषण पर हम पाते है कि जहां भी विशेष अधिनियम में समय के विस्तार या चूक को माफ करने का प्रावधान करता है, अदालत के पास उसके लिए शक्ति होती है, लेकिन जहां कानून में समय के विस्तार का या चूक को माफ करने का प्रावधान नहीं है तो निर्धारित अवधि के भीतर किराया जमा करने में

चूक करने पर न्यायालय को समय अवधि बढ़ाने का या चूक को माफ करने का अधिकार नहीं है।

41. इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वर्तमान अधिनियम में ऐसे प्रावधानों के अभाव में न्यायालय के पास किराया जमा करने की अवधि बढ़ाने का या किराया जमा करने में चूक को माफ करने की शक्ति नहीं है।

17. इसके अलावा, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशो की पीठ ने **"भारत संघ और अन्य बनाम ए0के0 पांडे** " में अभिनिर्धारित किया किः-

"15. यह सिद्धांत काफी अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि निषेधात्मक या नकारात्मक शब्द आमतौर पर प्रावधान की अनिवार्य प्रकृति के संकेतक होते है, हालांकि निर्णायक नहीं। न्यायालय को ऐसे प्रावधान के उद्देश्य और गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप होने वाले परिणामों की सावधानीपूर्वक जॉच करनी होगी। यदि संदर्भ न तो दिखता है और न ही इसकी अन्यथा मांग करता है, तो नकारात्मक रूप में लिखे गए कानूनी प्रावधान आमतौर पर आदेश के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। जब शब्द "करेगा " के बाद निषेधात्मक या नकारात्मक शब्द आते हैं, तो प्रावधान को पूर्ण, अनिवार्य और प्रभावी बनाने का विधायिका का आशय सुस्पष्ट हो जाता है और आमतौर पर इसका आशय इसी प्रकार से लगाया जाना चाहिए। हमारे फैसले मे संदर्भ से अन्यथा कुछ भी नहीं है। आरोपी पर आरोप लगाए जाने के बीच स्पष्ट रूप से 96 घंटा का अंतराल हो चाहिए जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया

जाना है और नियम 34 में उसके आरोप और अंतराल के समय को पूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए। इस प्रावधान के पीछे एक उद्देश्य हैः उद्देश्य यह है कि अभियुक्त को मुकदमे के लिए बुलाए जाने से पहले, उसे पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए उस आरोप पर ठंडे दिमाग से विचार करने के लिए जिसके लिए उसे विचारित किया जा रहा है, उसे उसके बचाव के बारे में निर्णय लेने हेतु और अधिकारियों से यदि आवश्यक हो, उसके गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठाने हेतु। वह आरोप से बचाव करने का निर्णय भी ले सकता है, लेकिन अपनी कार्रवाही की दिशा तय करने से पहले, उसे स्पष्ट रूप से छियानवे घंटे दिए जाने चाहिए।

18. **बी0पी0 खेमका** का निर्णय बिना किसी बंधन के देरी को माफ करने की शक्ति देने वाले कानून के संबंध में है। भूतलक्षी प्रभाव के साथ किए गए संशोधनो ने अन्य बातों के साथ-साथ उन किरोयदारों को सक्षम किया जो अदालत में आवेदन करने और किश्तो में बकाया किराए का भुगतान करने में सक्षम थें और इस तरह अपनी बेदखली को रोक सके। संशोधन के अनुसरण में किरायेदार ने किराया जमा कर दिया। हालॉकि, बाद में उन्होने मासिक किराया भुगतान करने में पुनः चूक कर दी। परिणामतः बचाव पक्ष के बचाव को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि सितम्बर 1968 और मार्च 1969 के महीनों के लिए किराए का भुगतान करने में क्रमशः 44 दिन और 6 दिन की देरी हुई थी, जो कि पश्चिम बंगाल अधिनियम की धारा 17(1) का उल्लंघन था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित

किया कि प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि यदि बाद की चूक 12 महीने की अवधि के भीतर 4 महीने की अवधि के लिए है, तो किरायेदार एक बार फिर उपधारा के तहत राहत का दावा कर सकता है, क्योंकि चूक 40 दिनों से कम का था, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त प्रावधान के तहत, देरी को माफ किया जा सकता है। म0प्र0 के एक्ट और दिल्ली का एक्ट का प्रावधान भी एक जैसा है।

19. अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (1) किरायेदार किराए के बकाया का भुगतान न करने के आधार पर बेदखल करने से राहत देती है यदि वह मकान मालिक को भुगतान करता है या सिविल जज के पास किराए के सभी बकाया जमा करता है, उस दर से जिस पर पिछली बार भुगतान किया गया था और उस महीने के अंत तक, जिसमें भुगतान किया गया था, दस प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ ऐसा भुगतान या जमा किरायेदार पर समन तामील होने के एक महीने के भीतर किया जाए या जहां वह मुकदमें में बिना समन तामील हुए उपस्थित होता है, उसकी उपस्थिति के एक महीने के भीतर किया जाए।

20. इसलिए, उपधारा (1) बकाया किराए के भुगतान से संबंधित है जब किराए की दर या बकाया किराए की अवधि के बारे में कोई विवाद नहीं है। यदि किरायेदार द्वारा देय बकाया की अवधि सहित किराए की राशि के बारे में कोई विवाद है, तो अधिनियम की उपधारा (2) प्रभाव में आती है। उस स्थिति में, किरायेदार उपधारा (1) में निर्दिष्ट समय के

भीतर आवेदन करने के लिए बाध्य है, जो कि समन प्राप्त होने के एक महीने के भीतर या अदालत के समक्ष पेश होने के एक महीने के भीतर सिविल जज के पास उसके द्वारा स्वीकार की गई राशि जमा करने के लिए दायत्वाधीन है। किरायेदार को देय किराए के निर्धारण के लिए एक आवेदन दाखिल करना भी आवश्यक है। ऐसी जमा राशि तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी, जब तक कि इसके साथ देय किराए के निर्धारण के लिए आवेदन न किया गया हो। इस प्रकार अधिनियम की उपधारा (2) में दो चीजों की आवश्यकता होती है, देय किराए के निर्धारण के लिए एक आवेदन के साथ किरायेदार द्वारा देय दर पर बकाया किराया जमा करना। यदि दोनों शर्ते पूरी की जाती है, तभी न्यायालय उस दर को ध्यान में रखते हुए जिस दर पर किराए का अंतिम भुगतान किया गया था और जिसके लिए किरायेदार चूक है, देय राशि को निर्दिष्ट करने वाला आदेश दे सकता है। इस तरह के निर्धारण के बाद किरायेदार को मकान मालिक को निर्दिष्ट राशि का भुगतान करने के लिए एक महीने का समय दिया जाता है। अधिनियम का प्रावधान बकाया किराया जमा करने के लिए समय बढ़ाने के न्यायालय के विवेकाधिकार को सीमित करता है। विस्तार एक बार प्रदान किया जा सकता है और दो महीने से अधिक नहीं।

21. उपधारा (3) किराए का भुगतान न करने के परिणामो का प्रावधान करती है यानी कब्जे को प्राप्त करने के खिलाफ बचाव को रद्द करना और मुकदमे की सुनवाई के लिए आगे बढ़ाए। यह प्रावधान मौलिक रूप से उपधारा (2ए) और (2बी) से भिन्न है जिसकी

विवेचना इस न्यायालय द्वारा बी0पी0 खेमका में की गयी थी। 1956 के अधिनियम के धारा 17 की उपधारा (2ए) और (2बी) के अंतर्गत न्यायालय को किराया जमा करने की अवधि बढ़ाने की निरंकुश शक्ति प्रदान की गयी थी, जिसे अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (2) और (3) के प्रावधानों द्वारा सीमित किया गया। इसलिए यदि किरायेदार को अधिनियम की धारा 6 के तहत बकाया किराए का भुगतान न करने के कारण बेदखली से बचना है, तो उपधारा (2) के प्रावधान के अनुसार बकाया किराया जमा करने के लिए समय का अनिवार्य रूप से पालन करना चाहिए। अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (2) के संदर्भ में बकाया किराया जमा करने के लिए समय बढ़ाने की कोई बाहरी सीमा निर्धारित की गयी है। इसलिए, यदि किरायेदार समन प्राप्त होने के एक महीने के भीतर या बिना समन के उपस्थित होने से एक महीने के भीतर किराए की स्वीकृत बकाया राशि जमा करने में विफल रहता है और किराए की दर की विवादित राशि और बकाया की अवधि के निर्धारण के लिए आवेदन करने में भी विफल रहता है और किराए के बकाया का निर्धारण करने के बाद में भुगतान न करने पर किरायेदार को बेदखल कर दिया जाएगा। अधिनियम की धारा 7 किराए की बकाया राशि के आधार पर बेदखली से बचने के लिए एक संपूर्ण तंत्र स्थापित करती है, बशर्ते कि किरायेदार अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (2) के तहत वर्णित कदम उठाए और किराए का बकाया निर्धारित होने पर जमा कर दे। बकाया का भुगतान न करने के आधार पर बेदखली से बचने के लिए विवादित राशि के निर्धारण के लिए आवेदन के

साथ किराया जमा करना एक पूर्व शर्त है। इस प्रकार किरायेदार परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का सहारा नहीं ले पाएगा क्योंकि यह केवल एक आवेदन नहीं है जिसे किरायेदार द्वारा दायर किया जाना आवश्यक है बल्कि किरायेदार को किराए की स्वीकृत बकाया राशि भी जमा करनी होगी।

22. नसीरूद्दीन के फैसले के अनुसार हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं। विचारण न्यायालय विधि सम्मत मुकदमे पर आगे की कार्यवाही करेगा। अपीलें खारिज की जाती है।

कल्पना के0 त्रिपाठी अपील खारिज की जाती है

CHANDRA BHANU KUMAR

PAGES- 1030 TO 1043